© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 03 | January – March 2018

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री शोषण

शोध–निर्देशक
अजय प्रसाद वर्मा
हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय दीफू कैम्पस
असम – 782460

शोधार्थी
हिटलर सिंह

ISSN : 2348-5612 © URR
9 770234 856124

20वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी महिला उपन्यासकारों की सशक्त हस्ताक्षर के रूप में डॉ० प्रभा खेतान जी (1942–2010) का नाम बड़े ही आदर से लिया जाता है । उनका सम्पूर्ण जीवन ही स्त्री के हितों की पैरवी करते हुये बिता है । अपने जीवन के आरंभ से ही उन्होंने स्त्री को असहाय, बेबस, पराश्रित, भेदभावों को चुपचाप सहती हुई, उपेक्षा एवं शोषण के बीच पाया । फिर यह शोषण पारिवारिक, सामाजिक–सांस्कृतिक–धार्मिक हो या आर्थिक, मानसिक–शारीरिक हो या किसी भी स्तर का ही क्यों न हो उन्होंने स्त्री को हर कहीं उपेक्षित एवं अपने अधिकारों से वंचित पाया है ।

उन्होंने कुल आँठ उपन्यास लिखे हैं – आओ पेपे घर चले, एड्स, अग्निसंभवा, छिन्नमस्ता, अपने–अपने चेहरे, तालाबंदी और स्त्रीपक्ष । उनके उपन्यासों के केंद्र में नारी की व्यथा–कथा है। उनके कथा साहित्य का कैनवास भारत तक ही सीमित नहीं है बल्कि विदेशों तक भी फैला है । अपने उपन्यासों में प्रभा खेतान जी ने पहली बार भारतीय मारवाड़ी स्त्री और विदेशी स्त्री की व्यथा को एक ही मंच पर लाकर खड़ा कर दिया है । उन्होंने वैश्विक धरातल पर बदलते हुये युग बोध के साथ मारवाड़ी और विदेशी स्त्री की समस्याओं को अपने उपन्यासों का मुख्य विषय बनाया है । इसपकार स्त्री जीवन के विविध पक्षों की स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करती है प्रभा खेतान के उपन्यास ।

प्रभा खेतान जी के उपन्यास अर्थ और सेक्स की धुरी पर केन्द्रित है । प्रभाजी के समस्त उपन्यास अपने परिवेश से प्रेरणा पाकर युगीन सत्य से हमें रूबरू करवाती हैं । उन्होंने अपनी सहज शैली में 'नारी' के विविध स्वरूपों द्वारा नारी विमर्श के विभिन्न प्रश्नों का यथार्थ चित्रण अपने उपन्यासों में किया है । और दर्शाया है कि किस प्रकार प्रत्येक स्तर पर उसके साथ शोषणपूर्ण व्यवहार अपनाया गया है ।

शोषण के विविध आयाम :–

सामाजिक शोषण – उनके कुल आँठ उपन्यासों में से तीन उपन्यास विदेशी संस्कृति पर आधारित है और अन्य चार उपन्यास भारतीय मारवाड़ी परिवेश के इर्द–गिर्द बुने गए हैं । प्रभा खेतान जी ने पाया कि भारत हो या जीवन की सुख–सुविधाओं से सम्पन्न विदेश की स्त्री, सभी की अवस्था एक–सी है । भीतर से वह कितनी अकेली, असहाय और पीड़ित है इसका चित्रण उनके उपन्यासों में गहरी संवेदनशीलता से किया गया है । पुरुषवादी वर्चस्वपूर्ण समाज स्त्री का शोषण करता ही आया है ।

समाज में सत्ता एवं संपत्ति का वारिस पुत्र को ही माने जाने के परिणामस्वरूप पुत्र के जन्म की चाहत लोगों के दिलों–दिमाग में हावी रहती है । प्रभा खेतान जी ने अपने उपन्यासों में दर्शाया है कि किस प्रकार पुत्र की चाहत से ग्रस्त समाज पुत्री से उसके जन्म के अधिकार को ही छीन रहा है । समाज पुत्र को ही कुलदीपक के रूप में प्रतिष्ठित करता आया है । बचपन से ही उसके जेहन में यह बात ठूँसकर भर दी जाती है कि वह श्रेष्ठ है । वह समाज में तमाम सुख–सुविधाओं का हकदार है । इस तरह समाज लड़की को दोयम दर्जे का मानता रहा है । उसे अपने अधिकारों से बेदखल करता

आया है । लिंगभेद की इस नीति से स्त्री शोषण को बढ़ावा मिलता है । स्त्रियों को बोझ और पराया धन समझा जाता है और उसे व्यक्तित्व विकास के अवसरों से वंचित रखा जाता है । उसे शिक्षित कराना जरूरी नहीं समझा जाता । बाल–विवाह, सती प्रथा, शिक्षा से उपेक्षा, देवदासी प्रथा जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियाँ उनपर थोपी गई बाधाएँ ही थी ।

सदियों से देह स्त्री के शोषण का कारण रही है । समाज में स्त्री की पहचान उसकी देह के इर्द–गिर्द ही घुमती रहि है । समाज के लिए स्त्री मात्र एक वस्तु है, उसे अब भी मनुष्य का दर्जा नहीं दिया गया है । 'आओ पेपे घर चले' में कैथी प्रभा से कहती है – "प्रभा, औरत अभी मनुष्य श्रेणी में नहीं गिनी जाती और तुम अमीर–गरीब का सवाल उठा रही हो ? राष्ट्र का भेद समझा रही हो ? माई स्वीट हार्ट ! हम सब अर्ध–मानव है। पहले व्यक्ति तो बनो, उसके बाद बात करना ।"[1]

घरेलु हिंसा और बलात्कार की घटना इसी का पर्याय है । इस प्रकार सामाजिक शोषण के विभिन्न पहलुओं को उद्‌घाटित कर प्रभा खेतान इस सच्चाई का पर्दाफाश करती है कि स्त्री हर कहीं रौंदी गई, कुचली गई है । स्त्री को अपने व्यक्तित्व विकास के अवसरों से वंचित कर समाज उसे अपाहिज बनाए रखने में ही अपनी इतिश्री मानता रहा है । स्त्री के प्रति समाज के रवैये को पर्त–दर–पर्त उघाड़कर समाज के खोखलेपन की ओर लेखिका इशारा करती हैं ।

प्रभा खेतान सामाजिक संस्थानों की नारी विरोधी प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुये कहती है – "मगर पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री–विमर्श परम्पराओं का आशय पूरी तरह विशिष्ट है । ये परम्पराएँ स्त्री को घर सौंपती है, बच्चों का भरण–पोषण सौंपती है । मानवता के नाम पर वृद्ध और बीमारों के लिए उससे निशुल्क सेवा लेती है और बदले में उसके द्वारा की गई सेवाओं का महिमा मंडन कर अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर लेती है । स्त्री भूखी है या मर रही है इसकी चिंता किसी को नहीं होती... ।"[2]

धर्म एवं परम्पराओं के नाम पर शोषण – भारतीय हिन्दू समाज जन्म से लेकर मरण तक धार्मिक संस्कारों से बुरी तरह जकड़ा हुआ है । लड़की के जन्म के साथ ही उसकी मानसिक अनुकूलन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है । इसके जरिये उसे दिमागी एवं मानसिक तौर पर गुलाम बनाए रखने के षड्यंत्र रचे जाते हैं । परंपरा और धर्म का आधार इसमें अहम भूमिका निभाती है । धर्मांधता, रूढ़िवाद और अंधविश्वास कूप मंडूक मान्यताओं को जन्म देते हैं । उनका लक्ष्य महिलाओं को मूर्ख बनाकर उनका शोषण करना रहता है । इसके माध्यम से स्त्री को अत्याचार को सहने की हिदायत दी जाती है और समझाया जाता है कि चुप्पी साधे रहने में ही उसकी भलाई है । 'पीली आँधी' में सोमा अपनी ताई के बारे सोचती है, "ताई जी तो हमेशा पितृपक्ष के पंद्रह दिनों में सारे पूर्वजों को याद करती, खासकर माँ बाबूजी और ताऊजी को । श्राद्ध के दिन तेरह ब्राह्मणों का भोज प्रत्येक को धोती, गमछा । ब्राहमनों को भाई साहब लोग खुद भोजन परोसते । यानी गो–ग्रास से लेकर तिलक–दक्षिणा तक सब बेटे–बहुओं को भूखे पेट काम में लगा रहना पड़ता । तेरे ताऊजी को खीर–जलेबी बहुत पसंद थी, वही बनेगा । तेरी सास को पंचमेले की सब्जी और पातड़ी का दही बड़ा पसंद था, बड़ोरी बीणनी, महाराज जी से बोलना कि रसोई स्वाद उतारेंगे । कहीं गलती न हो जाये ।"[3]

यौन शोषण –

यह शोषण का सबसे घृणित रूप है । अपनी मानवीय संवेदनाओं को भुलाकर पशुत्व की तरह बलात्कार करनेवाले काम संबंधों को घृणित ही कहा जा सकता है । यह शारीरिक से अधिक मानसिक कष्ट प्रदान करता है । इससे शोषित मन आजीवन आक्रांत रहता है । समाज द्वारा पुरुष को यही पट्टी पढ़ाई जाती है कि स्त्री भोग्या है और पुरुष भोगता । पुरुष स्त्री को आजमाने से नहीं चूकता । कहीं भी हो उसके देह को दबोचने के लिए वह आतुर है । 'छिन्नमस्ता' में प्रिया को प्रेम के जाल में फँसाकर प्रो० मुखर्जी द्वारा उसके देह का इस्तेमाल किया जाता है और उसे फेंक देता है – "मूर्ख

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 03 | January – March 2018

लड़की ! मैंने कब कहा था कि मैं तुमसे शादी करूँगा ? हम दोनों ने मौज की द्य बस, बात खतम द्य और सुनो, फिर कभी यहाँ मत आना । मैं अब शादीशुदा आदमी हूँ ।"[4]

उसके इस हरकत से प्रिया के दिल को चोट पहुँचती है । इसी तरह प्रिया का पति हर छः महीने एक से एक हसीन सेक्रेटरी बदलता रहता है और अपनी भूख मिटाता है । एक बार तो एक सेक्रेटरी नरेंद्र की भूख को प्रेम समझ बेठी थी और नरेंद्र ने भी प्रेम के जाल में फँसाकर उसके देह का इस्तेमाल ही किया था । इस तरह स्त्री को कदम कदम पर यह एहसास दिलाया जाता है कि वह मात्र देह है । पुरुष उसकी देह को दबोचने की ताक में लगा रहता है ।

परिवार में होने वाले शोषण –

परिवारिक शोषणों में मुख्य है उसके साथ लिंग के आधार पर भेदभाव । अपने जन्म के साथ ही किसी कन्या को इस लैंगिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है । जिसने जीवन को अभी समझना भी शुरू नहीं किया उसे यह समझा दिया जाता है कि वह घृणा और उपेक्षा की पात्रा है क्योंकि वह पुत्र नहीं पुत्री है । अपने परिवार के लोगों द्वारा ही उसे यह बार–बार एहसास कराया जाता है कि वह निकृष्ट है, कारण सिर्फ यह कि वह कन्या है । लिंगभेद की इस नीति से स्त्री शोषण को बढ़ावा मिलता है । उसे समाज में बोझ समझा जाता है । उसकी अवमानना की जाती है और उसके विकास के सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिये जाते हैं । मारवाड़ी पारंपरिक समाज में जहाँ लड़की का जन्म मनहूस समझा जाता है । परिवार में कन्यादृजन्म पर चिंताएँ प्रकट होने लगती है । 'छिन्नमस्ता' में प्रिया दस साल की उम्र में अपने बड़े भाई के हवस की शिकार होती है । दाई माँ द्वारा उसे चुप रहने की हिदायत दी जाती है । आगे भी यह सिलसिला जारी रहता है । प्रिया सोचती है – "पर क्या समाज स्त्री की रक्षा करता है ? क्या पुरुष की कामुक हवस का शिकार होने से मासूम लड़कियाँ बच पाती है ? कब और कहाँ नहीं मुझ पर आक्रमण हुआ ? वह कैसा बचपन था ? क्या मेरा बचपन.... न केवल भाई ने बल्कि एक दिन एक नौकर ने भी अपनी गोद में बिताया था । बहुत छोटी थी, पाँच साल की । तब तो बाबूजी भी जिंदा थे और दाई माँ ने उसे देख लिया था । बाघिन सी झपटती हुई दाई माँ और उनकी गालियों की बौछार... ।"[5]

आर्थिक शोषण –

सदियों से समाज स्त्री की आर्थिक अवदान को नकारता रहा है और स्त्री का आर्थिक रूप से शोषण करता आ रहा है । आर्थिक संबल के बिना स्त्री किस कदर रेंगती हुई जिंदगी बिताने को विवश हो जाती है । स्त्री को सामाजिक कार्यक्षेत्र से पूर्णतः खदेड़कर घर की चारदीवारी में कैद कर दिया गया । घर ही उसका एकमात्र कार्यक्षेत्र माना जाने लगा । और स्त्री के श्रम को कमतर करके आँका जाने लगा । घरेलू श्रम को उत्पादन श्रम में शामिल नहीं किये जाने के कारण उसका कोई मूल्य भी नहीं होता । भौतिक आधार पर स्त्री की निम्नस्थिति का यह एक महत्त्वपूर्ण कारक है । प्रभाजी ने श्रम के शोषण को वैश्विक धरातल से जोड़कर यह बतलाने की चेष्टा की है कि शोषक और शोषित वर्ग पूरे विश्व में व्याप्त है । यह महज भारत की समस्या नहीं है । इस प्रकार प्रभाजी ने यह बताने का प्रयास किया है कि आज सभी रिश्ते अर्थ की धुरी पर घूम रहे हैं । 'स्त्री पक्ष' उपन्यास में वृन्दा का पति डॉक्टर है । वृन्दा अपनी गृहस्थी में पूरी तरह से रम चुकी थी । वह सारा दिन घर के कामकाजों में खटती है और थककर चूरचूर हो जाती । इसी सच्चाई का खुलासा वह अपने पति सुमित से करती है – "लेकिन मेरे काम का तुम्हारे जीवन में महत्त्व क्या था ? तुमने तो अपने कर्मों को ही महत्त्वपूर्ण माना, जरा विचार करके देखा होता, मेरे जैसी सस्ती नौकरानी तुम्हें कहाँ से मिलती ?"[6]

आर्थिक विपन्नता के परिणामस्वरूप स्त्री समाज एवं परिवार में सम्मान से वंचित रहती है । स्त्री को अपनी छोटी–छोटी जरूरतों के लिए दूसरों के सामने हाथ पसारना पड़ता, उनका मोहताज होना

पड़ता है । पैसे के साथ–साथ पैसे देनेवालों की जली कटी भी सुननी पड़ती है जिससे स्त्री के आत्मसम्मान को चोट पहुँचता है । 'छिन्नमस्ता' में दाई माँ बच्चों की आया है । लेकिन जरूरत पड़ने पर उससे घर के अन्य काम भी कराये जाते थे । वह बड़ी कर्मठता से अपना काम करती थी । अपने जीवन के तीस वर्ष उसने इस घर की सेवा में बिता दिये थे । ऐसी कर्मठ महिला के घर से यदि कोई मिलने आता तो उसे कुछ खिलाने–पिलाने की मनाही थी । अगर दाई माँ उन्हें खाने या पीने के लिए कुछ देती तो उन्हें प्रिया की माँ से कुछ न कुछ सुनना पड़ता । प्रिया के प्रति दुर्व्यवहार देखकर जब दाई माँ काम छोड़कर जाती है तब उस घर की महिलाएँ खुश होती है । कोई भी उसे रोकता नहीं है और ना ही कुछ रुपये या कपड़े देकर उसका धन्यवाद ही प्रकट किया जाता है । प्रिया अपने गले से सोने की चौन उतारकर दाई माँ को देना चाहती है, जिसे दाई माँ अस्वीकार कर देती है ।

प्रभा खेतान जी ने जहाँ अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री शोषण के विविध आयामों की बारीकता से चर्चा की है । वहीं उनके उपन्यासों में शोषण के साथ–साथ स्त्री संघर्ष की अभिव्यक्ति भी हुई है । उन्होंने नारी को इन तमाम रूढ़ियों और मात्र एक सजावटी वस्तु के साँचे से निकालकर एक आत्मनिर्भर सफल कार्यशील महिला के रूप में स्थापित किया है जो महानगरीय जीवन से अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक अपनी स्वतंत्र पहचान बनाती है। उनके स्त्री पात्र समाज की उन तमाम स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो आज अपने अस्तित्व के समकक्ष किसी भी रिश्ते के साथ समझौता स्वीकार नहीं करती है । उपन्यासों के पात्र अपनी प्रतिभा और संकल्प शक्ति से एक नई शक्ति और चुनौती के रूप में उभरते हैं । उन्होंने अपने 'अग्निसंभवा' उपन्यास में आई० वी के जीवन संघर्षों द्वारा स्त्री द्वारा अपनी जिंदगी को स्वयं सार्थक बनाने की कोशिश को प्रकट किया है । प्रतिकूल परिस्थितियों से भागने के बजाए यह उपन्यास अदम्य साहस के साथ संघर्षों से जूझते हुये अपने जीवन को गति देने की प्रेरणा देती है । "आई०वी अपनी अस्मिता की सीमाओं का अतिक्रमण कर धुआँ रहित अग्नि की लपटों को अपने भीतर स्वीकारती है । प्रज्वलित होकर एक नए हाशिये पर एक भिन्न प्रकार का आकार बनाती जाती है । इस अग्नि को अपनी संवेदना से जोड़ने के लिए पाठक के पास अनंत समभावनाएँ हैं जो प्रभा जी ने दी है ।"[7]

संदर्भ सूची

[1] खेतान, डॉ० प्रभा, आओ पेपे घर चले, सरस्वती विहार, दिल्ली, संस्करण 1990, पृ० 109

[2] खेतान, डॉ० प्रभा, उपनिवेश में स्त्री : मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नयी दिल्ली, संस्करण 2003, पृ०15

[3] खेतान, डॉ० प्रभा, पीली आँधी, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नयी दिल्ली, संस्करण 2001, पृ० 242

[4] खेतान, डॉ० प्रभा, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नयी दिल्ली, संस्करण 1993, पृ० 122

[5] खेतान, डॉ० प्रभा, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नयी दिल्ली, संस्करण 1993, पृ० 119

[6] खेतान, डॉ० प्रभा, स्त्री पक्ष, सबरंग पत्रिका जनसत्ता, फरवरी– अगस्त 1999

[7] मल्लीक, डॉ० परवीन, प्रभा खेतान और उनका साहित्य, ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली, संस्करण 1994, पृ० 231